इकाई 4 भारत में विज्ञान का स्वर्ण युग

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
4.2 भारत में दूसरी नगरीय सभ्यता
भारतीय राज्य
मौर्य साम्राज्य में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास कार्य
दक्षिण भारत में विकास कार्य
4.3 गुप्त काल
सामाजिक संगठन
तकनीकों तथा शिल्पकला में सुधार
गणितशास्त्र के क्षेत्र में उपलब्धियाँ
खगोल विज्ञान के क्षेत्र में उपलब्धियाँ
गुप्त साम्राज्य का पतन
4.4 संघर्ष का युग
4.5 सारांश
4.6 अंत में कुछ प्रश्न
4.7 उत्तर

4.1 प्रस्तावना

इकाई 3 में हमने ईसा की चौथी शताब्दी पूर्व तक भारत में हुई विज्ञान की प्रगति का विवेचन किया है। आपने देखा होगा कि इस अवधि में विज्ञान की प्रगति में नगरीय समाजों के उदय ने किस प्रकार सहायता की। अब आप भारत में विज्ञान के इतिहास के सबसे अधिक महत्वपूर्ण युग के बारे में पढ़ेंगे। यह काल मोटे तौर पर ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से आरंभ होकर लगभग ग्यारह शताब्दियों तक रहा। इस अवधि में उत्तर भारत में जंगलों को काटकर एक स्थान पर बसकर खेती करने की प्रक्रिया शुरू हुई। छोटे-छोटे राज्य बड़े साम्राज्यों में बदलने लगे और इसी के साथ व्यापार और वाणिज्य भी फलने-फूलने लगा। साम्राज्यों ने सबके लिए समान कानून और नियम बनाये और ये कानून एक बहुत बड़े भू-भाग पर लागू होते थे। एक ऐसी सत्ता उभर कर सामने आयी जो अपनी प्रजा के हितों की देखभाल करती थी और इस प्रकार भारत में शांति और समृद्धि के युग की शुरुआत हुई। यह सिलसिला सातवीं शताब्दी तक लगातार चलता रहा।

यह काल भारत में विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियों का युग था। खासकर इस दौरान खगोल विज्ञान एवं गणितशास्त्र के क्षेत्र में विशेष उपलब्धियाँ हुई। यह बौद्ध और जैन धर्म जैसी महान् उदारवादी धार्मिक विचारधाराओं का भी समय था। किंतु इस काल के अंत तक इन धार्मिक सिद्धांतों का महत्व कम होता गया और उनके स्थान पर कट्टर हिंदू वर्ण व्यवस्था फिर से स्थापित हो गयी। इन धर्मों के वैचारिक संघर्षों का विज्ञान के विकास पर स्थायी प्रभाव पड़ा। जैसे-जैसे साम्राज्य छोटे-छोटे सामंतशाही राज्यों में बँटते गये, वैसे-वैसे विज्ञान का भी पतन होता गया। किंतु, सौभाग्य से इससे पहले महान् भारतीय वैज्ञानिक परंपरा अरबों के पास पहुँच चुकी थी। अरबों ने विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। बाद में भारत को भी इसका लाभ हुआ। विज्ञान में अरबों का योगदान तथा मध्ययुगीन भारत में विज्ञान के बारे में आप अगली इकाई में पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- भारतीय राज्य तथा सामाजिक संगठनों की उन महत्वपूर्ण विशेषताओं को स्पष्ट कर सकेंगे, जिनके फलस्वरूप मौर्य और गुप्त काल में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति में सहायता मिली;
- ईसा पूर्व चार शताब्दी से लेकर ईसा के बाद सातवीं शताब्दी तक भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई महत्वपूर्ण उपलब्धियों का विवरण दे सकेंगे; और
- उन कारणों को स्पष्ट कर सकेंगे जिनसे सातवीं शताब्दी तक भारत में विज्ञान का ह्रास आरंभ हो गया।

4.2 भारत में दूसरी नगरीय सभ्यता

हम इकाई 3 में आपको यह बता चुके हैं कि ई. पू. सातवीं शताब्दी में जो 16 जनपद थे, उनमें मगध सबसे बड़ी शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया। अतः एक हज़ार वर्ष के पहले हुए हड़प्पा सभ्यता के पतन के बाद भारत में दूसरी नगरीय सभ्यता के पनपने का मार्ग प्रशस्त हो गया था। यह द्वितीय चरण मौर्य राजा, सम्राट चंद्रगुप्त के उदय के साथ ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में शुरू होता है। अंतिम मौर्य सम्राट अशोक ने लगभग ईसा के 270 वर्ष पूर्व राजगद्दी संभाली। उनका साम्राज्य पूरे उत्तर भारत से लेकर दक्षिण में आज के कर्नाटक राज्य तक फैला हुआ था (चित्र 4.1)।

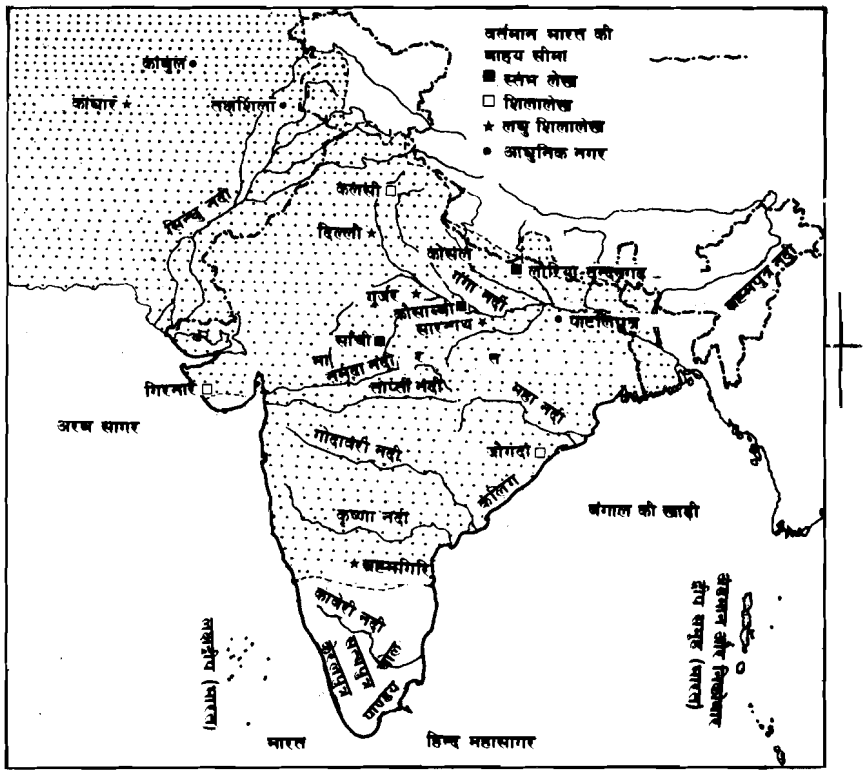

चित्र 4.1 अशोक का साम्राज्य (लगभग 274—236) ईसा पूर्व।

साम्राज्य की रुचि मुख्यतः कृषि योग्य भूमि पर अपना अधिकार जमाये रखने की थी। अतः छोटे-छोटे राज्यों को जीतकर वहाँ के आदिवासियों की भूमि ले ली गयी। पराजित देश की स्थानीय जनता राजकीय कर्मचारियों की देखरेख में वहीं बसकर कृषि-कार्य में लग गयी। ये राजकीय कर्मचारी प्रायः ब्राह्मण हुआ करते थे। उन्होंने उस समय खोजी गयी नयी तकनीकों को अपनाना आरंभ कर दिया। कृषि-भूमि दो प्रकार की होती थी; पहली वह जिससे राज्य को कर प्राप्त होते थे। उसका प्रशासन अर्द्धस्वायत्त एवं स्थानीय किस्म का होता था, हालाँकि फ़सल का छठा भाग साम्राज्य के राजकोष में चला जाता था। दूसरे किस्म की भूमि "सीता भूमि" होती थी और यह सीधे राज्य की देखरेख में आती थी। इसकी जुताई-बुआई आदि बस्तियों में बसाये गये 100 से 500 शूद्रों द्वारा करायी जाती थी। ये लोग राजा को अपनी पैदावार का पाँचवा हिस्सा दिया करते थे। इसमें "सेना के राशन" के रूप में दिया जाने वाला कर और राजा को भेंट के रूप में दिया जाने वाला अनाज शामिल नहीं था (चित्र 4.2)।

इतने बड़े पैमाने पर भूमि पर कब्जा करके उसे कायम रखने के लिए प्रशिक्षित सेना के साथ-साथ सैद्धांतिक तथा धार्मिक अधिरचना, कृषि के सुदृढ़ आधार तथा खनन उद्योग की ज़रूरत होती थी। इन सबसे ऊपर एक केंद्रीकृत राज्याधिकारी की ज़रूरत थी जो इस प्रकार के असमान एवं पंचमेल साम्राज्य को एक रखकर उसका विस्तार कर सके। आइए, देखें कि मौर्य साम्राज्य में राज्य की शक्ति के सामाजिक एवं राजनीतिक संगठन का स्वरूप क्या था?

4.2.1 भारतीय राज्य

ऐसे राज्य और उनकी नीति का वर्णन चंद्रगुप्त के महामात्य कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र में किया गया है। उनके अनुसार यह एक ऐसा शक्तिशाली केंद्रीकृत राज्य था जो न केवल उद्योग

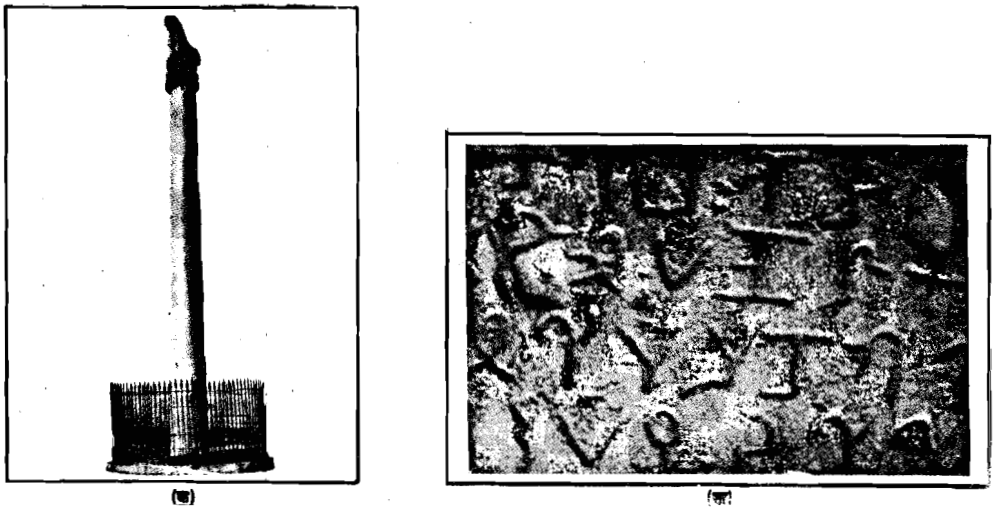

चित्र 4.2 अशोक की नीतियों की अधिकांश जानकारी उन लेखों से मिलती है जो खरोष्ठी लिपि में चटटानों पर, तराशे हुए पत्थरों पर, स्तम्भों पर और गुफाओं में खुदे हैं। यहाँ तक कि कान्धार में ये लेख ग्रीक भाषा और ग्रीक लिपि में लिखे गये हैं। (क) लौरिया-नन्दनगढ़ में स्थित अशोक स्तंभ। (ख) अशोक के काल का एक शिलालेख।

का मुख्य स्वामी होता था बल्कि वस्तुओं का भी सबसे अधिक उत्पादन करता था। राज्य द्वारा पैदा की गयी वस्तुएँ व्यापारियों द्वारा खरीदी और बेची जाती थीं। व्यापारी वर्ग पूरे साम्राज्य में एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करता था और प्रायः नदी मार्ग से नावों द्वारा आया-जाया करता था। कभी-कभी तो अपना माल बेचने के लिए वे बर्मा, इंडोनेशिया, तथा श्रीलंका भी जाया करते थे। व्यापारिक-प्रक्रियाओं और व्यापारियों द्वारा लिये जाने वाले मूल्यों पर राज्य का कठोर नियंत्रण होता था। भूमि और व्यापारियों से वसूल किये जाने वाले राजस्व के नियम स्पष्ट, सख्त और सीधे होते थे। इस राजस्व का उपयोग 5 लाख व्यक्तियों की भारी फौज का रख-रखाव करने में किया जाता था। ये सैनिक भूमि का अधिग्रहण करते थे, उसकी रक्षा करने के साथ-साथ सीमाओं की भी रक्षा करते थे, तथा वृहत् साम्राज्य में कानून और व्यवस्था बनाये रखते थे। इस राजस्व का उपयोग ऐसे अनाथों, बूढ़ों, कमज़ोर व्यक्तियों, विधवाओं तथा गर्भवती महिलाओं के लिए किये जाने वाले कल्याणकारी कार्यों में भी किया जाता था, जिनके पास कोई और साधन नहीं था।

यद्यपि सेना किसी भू-भाग को जीत सकती थी, तथापि इस बात का निर्धारण नहीं कर सकती थी कि पराजित भू-भाग के लोग साम्राज्य की स्वेच्छा से शांतिपूर्वक सेवा करेंगे और उसे समृद्धशाली बनाएँगे। हम पाते हैं कि राज्य ने इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए बहुत ही चतुराई से धर्म का इस्तेमाल किया।

राजा के प्रतिनिधि के रूप में ब्राह्मण इस अभियान का प्रचार एवं प्रसार नये क्षेत्रों में करते थे। एक ऐसी प्रक्रिया आरंभ हुई जिसके अंतर्गत कबीलों के देवताओं को आर्यों के सर्वमान्य देवताओं के समान माना जाने लगा। ब्राह्मणों ने ऐसे जनजातीय देवी-देवताओं के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए जिन्हें वे वैसे अपना नहीं सकते थे, नये धर्म-ग्रंथों की रचना की। जनजातीय रीति-रिवाज़ों को महत्व देने के लिए कई नये विधि-विधान एवं कर्मकांड शुरू किये गये और साथ ही चंद्र-पंचांग के अनुसार विशेष तिथियाँ लागू की गयीं। परम्परागत हिंदू धर्म-ग्रंथों में आदियुगीन मत्स्य, कच्छप, वानर, वृषभ आदि टोटेमवादी (totemic) देवी-देवताओं को स्थान देकर उन्हें भगवान विष्णु आदि हिंदू देवताओं का सहयोगी या उनका अवतार बताया गया। इसके अतिरिक्त इस आशय के विचारों का भी प्रचार-प्रसार किया गया कि कबीलों के सरदार भी "द्विज" होते हैं अर्थात् दो बार जन्म लेते थे। इसके फलस्वरूप उन्हें उच्च जाति का विशेष दर्ज़ा प्राप्त हो गया। इस प्रकार जाति का एक ऐसा सूक्ष्म ढाँचा तैयार किया गया, जिसके अंतर्गत जनजाति समुदाय के विशिष्ट शासक-वर्ग को साम्राज्य के शासक-वर्ग में शामिल कर लिया गया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि जनजातीय संगठन साम्राज्य की अधिक बलशाली जातीय-वर्ण-व्यवस्था में घुल-मिल गया। वैश्यों और शूद्रों का वर्ग, जो इन जनजातियों में नया बना था, साम्राज्य के कृषकों एवं श्रमिकों के निचले समुदाय में शामिल हो गया और साथ ही इससे उनकी अपनी परंपराओं, संस्कृति और धर्म पर प्रत्यक्ष रूप से कोई ग़लत असर नहीं पड़ा। उन्होंने इन सबको संजोये रखा।

ब्राह्मण वर्णाश्रम पद्धति को आसानी से लागू कर सकने में समर्थ थे, क्योंकि उन्होंने जनजाति के

लोगों के लिए कृषि एवं वस्तु-उत्पादन के नये द्वार खोलने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। उन्होंने खाद्य-सामग्री जुटाने की, काटने और जलाने की पद्धति के स्थान पर हल द्वारा खेती करने की पद्धति शुरू की। ब्राह्मणों द्वारा नयी फ़सलों और दूर-दूर के बाज़ारों की जानकारी उपलब्ध कराने के फलस्वरूप लोगों के मन में अधिक उत्पादन करने की भावना जागृत हुई।

इन घटनाओं के फलस्वरूप भूमि से प्राप्त होने वाले उत्पादन पर गहरा असर पड़ा। उनके मन में शांतिपूर्ण जीवन के प्रति लगाव पैदा हुआ, जिससे वे सांस्कृतिक रूप से एकता के सूत्र में बंध गये। इन घटनाओं से राज्य की धन-संपदा में वृद्धि हुई। किंतु नया धर्म, जो एक समय के दौरान विकसित हुआ था, अब संस्कृति एवं उत्पादन, दोनों के ही विकास में बाधक बनने लगा। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि इसने अंध-विश्वासों पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर देना शुरू कर दिया, जो कबायली जीवन-शैली एवं अविवेक पूर्ण कर्मकांडों के ही एक हिस्से थे। जिन अंधविश्वासों ने निचली जातियों की विचारधारा को जन्म दिया था, वास्तव में उन्हीं के कारण वे सदा दासता की बेड़ियों में जकड़े रहे। अंत में इन अंधविश्वासों के कारण वैज्ञानिक विचारधारा के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगा।

कोई आश्चर्य नहीं कि इन्हीं अंधविश्वासों और कर्मकांडी संस्कृति के विरोध में सम्राट अशोक ने प्रतिक्रिया स्वरूप बुद्ध के उपदेशों को ग्रहण किया। बौद्ध धर्म अपने प्राकृत रूप में कर्मकांडों और अंधविश्वासों से दूर था और अत्याचारों का डटकर विरोध करता था। बौद्ध धर्म सादे जीवन पर ज़ोर देता था, (चित्र 4.3)।

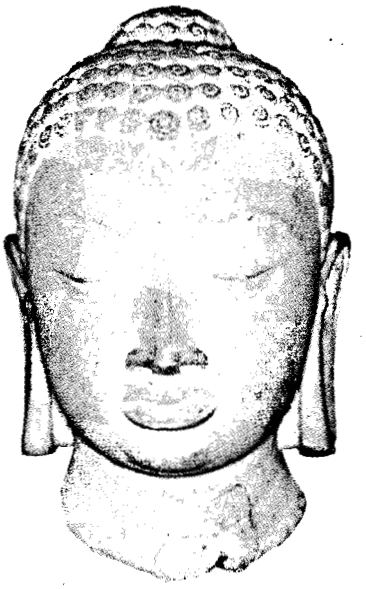

(क)

किसी भी बात पर विश्वास न करें
सिर्फ इसलिए कि वह आपको बतायी गयी है या वह पारंपरिक है
या उसकी कल्पना आपने स्वयं की है
अपने अध्यापक द्वारा बतायी गयी बातों पर विश्वास न करें
सिर्फ इसलिए कि आप अपने अध्यापक का सम्मान करते हैं
पर विधिवत् परीक्षणों और विश्लेषणों के बाद आप पाते हैं कि यदि कोई विचार
सभी प्राणियों की अच्छाई के लिए
लाभ के लिए,
कल्याण के लिए सहायक है
तो उसी सिद्धांत में विश्वास करें,
उसमें निष्ठा रखें
और उसे अपना मार्ग दर्शक मानें।
गौतम बुद्ध

(ख)

चित्र 4.3 (क) गुप्तकाल का बुद्ध का चित्र-पाँचवी सदी ईसवीं। (ख) गौतम बुद्ध की शिक्षाएं। उनकी शिक्षाओं के वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर ध्यान दें।

अशोक एवं उसके बाद के भारतीय राजाओं ने बौद्ध मठों को उदारतापूर्वक अनुदान दिया, जिससे शिक्षा एवं विज्ञान को बढ़ावा मिला। नालंदा महान् बौद्ध मठ था। यह एक ऐसा मंच था जहाँ विभिन्न विद्वान् लगातार मिलते रहते थे और औषधि-शास्त्र, खगोल-विज्ञान, मानविकी तथा धर्म शास्त्रों पर अपने विचारों का आदान-प्रदान करते थे। भारतीय साम्राज्य के शासकों ने इन मठों को लगातार मध्ययुग तक सहायता देना जारी रखा (चित्र 4.4)।

चित्र : 4.4 नालन्दा में मठों का एक दृश्य

ये मठ धनी संस्थान बन गये और ये व्यापारियों को धन एवं पूँजी उपलब्ध कराते थे। बाद में बौद्ध धर्म की तपोमय सरलता का स्थान कर्मकांडी धर्म ने ले लिया। यद्यपि बौद्ध धर्म ने हिंदुओं की कठोर जाति-प्रथा को आरंभ में चुनौती दी थी, लेकिन अंततः हिंदुओं का ही पलड़ा भारी रहा। इसका कारण यह था कि बौद्ध धर्म ने लोकप्रियता हासिल करने के लिए उस समय की हिंदू धर्म की वैचारिक तथा कर्मकांडी प्रथाओं को अपनाना शुरू कर दिया।

हमने ऊपर मौर्य साम्राज्य की आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का कुछ विस्तार से इसलिए, उल्लेख किया है क्योंकि इस घटना के स्वरूप ने विज्ञान के प्रयोग पर काफ़ी प्रभाव डाला। अब हम संक्षेप में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई घटनाओं पर प्रकाश डालेंगे। किंतु, इससे पहले यदि आप निम्नलिखित बोध प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश करें तो आप यह जान जाएंगे कि अब तक आपने क्या सीखा।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित कथनों में से मौर्य साम्राज्य की सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं को दर्शाने वाले ऐसे पाँच कौन-से कथन हैं, जिनके फलस्वरूप तत्कालीन तकनीकी विकास संभव हुआ। उनके

सामने सही (√) का निशान लगाएँ।

i) बड़े पैमाने पर भूमि का अधिग्रहण एवं उसकी सुरक्षा। ☐
ii) केंद्रीकृत राजकीय शक्ति का उदय। ☐
iii) बड़ी एवं प्रशिक्षित सेना का रख-रखाव। ☐
iv) साम्राज्य के भीतर तथा विदेशों के साथ व्यापार। ☐
v) राजस्व एकत्रित करने के लिए कानून बनाना। ☐
vi) कृषि तथा खनन उद्योग का विकास। ☐
vii) वैचारिक तथा धार्मिक अधिरचना का उदय। ☐

4.2.2 मौर्य साम्राज्य में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास कार्य

हमें 'अर्थशास्त्र' नामक ग्रंथ से मौर्य काल में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई महत्वपूर्ण घटनाओं के बारे में काफ़ी जानकारी मिलती है। अर्थशास्त्र में सेना के काम आने वाली उन मशीनों की विस्तार से चर्चा की गयी है, जो अपकेंद्री बलों (centrifugal forces) के सिद्धांत पर कार्य करती थीं। इन मशीनों को वायु,जल, भाप अथवा बिजली जैसी शक्ति से चलाने का विचार अभी नहीं उभरा था, जो कि आगे चलकर सामने आया।

सिविल इंजीनियरी के क्षेत्र में काफ़ी प्रगति हुई। "सीता भूमि" की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए सिंचाई के कई तरीकों का इस्तेमाल किया जाने लगा। सेना तथा व्यापारियों के आने-जाने की सुविधा के लिए पूरे साम्राज्य में सड़कों का निर्माण किया गया। दलदलीय स्थानों पर लट्ठों की सड़कें बनायी गयीं। उदाहरण के तौर पर, बिहार में सातवीं शताब्दी में भी ऐसी सड़कों का जाल मीलों तक फैला हुआ था। अधिकांश भवन लकड़ी के बने हुए थे। संभवतः अशोक के समय में पहली बार भारत में भवन-निर्माण में पत्थरों का प्रयोग शुरू हुआ। पत्थरों को चमकाकर शीशे जैसा कर दिया जाता था और उनका उपयोग स्तंभों और मेहराबों के निर्माण में किया जाता (चित्र 4.5)।

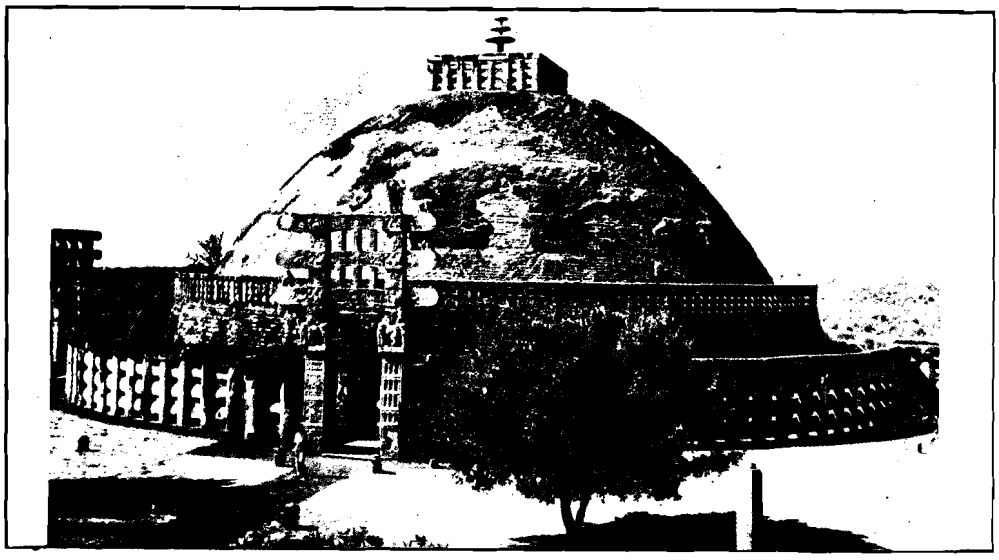

चित्र 4.5:सांची के स्तूप का एक सामान्य दृश्य। स्तंभ की जटिल कार्यकुशलता की तरफ़ ध्यान दीजिए जो उस काल की मानवीय कला और निपुणता का संकेत करते हैं।

ग्रामीण उद्योगों में भी कुछ प्रगति हुई थी। सीता भूमि के पास अनाज की भूसी निकालने, तिलहनों से तेल निकालने, कपास से बिनौला निकालने, सूत कातने, ऊन की किस्में निकाल कर उनकी सफ़ाई करने, कंबल बनाने तथा लकड़ियों को तख्तों और कड़ियों के रूप में बदलने में लघु उद्योग तथा अन्य संगत उद्योगों का जन्म हुआ (चित्र 4.6)। संभवतः पहली बार कारखाने में उत्पादन करने की संकल्पना ने जन्म लिया, क्योंकि उपर्युक्त सभी वस्तुएँ 'राज्य के भंडार-गृहों' के निरीक्षक की देख-रेख में बनायी जाती थीं। जब खेती का काम कम होता था तो स्थानीय मजूदरों को कुछ समय के लिए कारखानों में लगाया जाता था। इस उत्पादन प्रक्रिया के हर चरण पर प्रत्येक सामग्री में होने वाली सामान्य क्षति, कुशल मज़दूर का औसत उत्पादन, तैयार उत्पादन का अंतिम वज़न या माप आदि का सावधानी से बहियों में रिकार्ड रखा जाता था। इस रिकार्ड से उत्पादन पर नियंत्रण रखा जाता था।

प्रौद्योगिकी की प्रगति में सबसे बड़ा योगदान धातु-विज्ञान तथा धातु-कर्म के क्षेत्र से मिला। उत्तर-पश्चिम के स्थान पर मगध को शक्ति का केंद्र बनाने का मुख्य कारण लोहे, तांबे, टिन, सीसा तथा अन्य धातुओं की भारी माँग थी। हथियार और खेती के उपकरण मौर्य साम्राज्य की ख्याति के दो मुख्य स्तम्भ थे। धातुओं का इस्तेमाल हथियार और खेती के उपकरणों के साथ-साथ अन्य व्यापारिक वस्तुओं के निर्माण में भी होता था। अयस्कों से अपचयन और उन्हें गलाने का अर्थशास्त्र में भी संक्षेप में विवरण दिया गया है। इस ग्रंथ में विभिन्न अयस्कों के बीच दिखावट और अन्य गुणों में अंतर और उसके अनुसार उनके संसाधन तकनीकों में अंतर का विस्तार से विवरण दिया गया है। मिश्र धातु इस्पात बनाने के लिए साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में ख़ासकर दक्षिण से बढ़िया किस्म का लौह-अयस्क लाया जाता था। इन मिश्र धातुओं से बनी तलवारों को ग्रीस सहित कई देशों में बेचा जाता था।

बोध प्रश्न 2

हम नीचे साम्राज्य की कुछ आवश्यकताओं की सूची दे रहे हैं। प्रत्येक कथन के सामने यह संकेत करें कि इनके साथ कौन-सी तकनीकी विशेषताएँ जुड़ी थीं।

क) व्यापारियों तथा सेनाओं की बेहतर गतिशीलता .....

ख) भूमि की उत्पादकता में वृद्धि .....

ग) खपत तथा व्यापार के लिए वस्तुओं का निर्माण करने के लिए कृषि-उत्पादों का संसाधन .....

घ) शस्त्रों और खेती के सामान बनाना .....

हम पाते हैं कि ग्रामीण उद्योग, सिविल इंजीनियरी, धातु-विज्ञान एवं खनिज इंजीनियरी जैसे कुछेक क्षेत्रों में, मौर्य साम्राज्य ने उल्लेखनीय प्रगति की थी। अब हम पढ़ेंगे कि भारत के दूसरे हिस्सों में ख़ासकर दक्षिण भारत, में इसी अवधि में क्या कुछ हो रहा था।

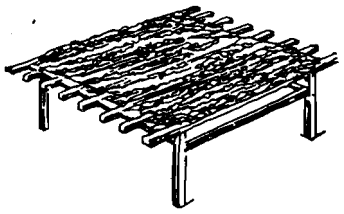

चित्र 4.6 अर्थशास्त्र में कई ग्रामीण उद्योगों का उल्लेख है जैसे ऊन को सुलझाना। इस प्रक्रिया में निम्न स्तर की ऊन को सुलझाया जाता था। ऊन को लचीली टहनी से बने चौखट पर फैलाकर कामगार उसे तार की खुरचनी से अलग-अलग करते थे।

4.2.3 दक्षिण भारत में विकास कार्य

अशोक के बाद मौर्य साम्राज्य छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया जिनमें आपस में कटु प्रतिस्पर्द्धा थी। उनके बाद जिस साम्राज्य का उदय हुआ, वह कुषाण वंश था। यह साम्राज्य ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में उभरा। इसमें न केवल उत्तर तथा उत्तर-पूर्वी भारत के क्षेत्र भी आते थे। बल्कि मध्य एशिया और वर्तमान पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान के क्षेत्र भी आते थे। कनिष्क के शासन काल में (द्वितीय शताब्दी) उसका साम्राज्य पूर्व में बिहार के कुछ हिस्सों के साथ-साथ मध्य एशिया में नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। दक्षिण भारत में, लगभग इसी समय सातवाहनों, क्षत्रप तथा वाकाटकों के कुछ शक्तिशाली राज्यों का उदय हुआ (चित्र 4.7)।

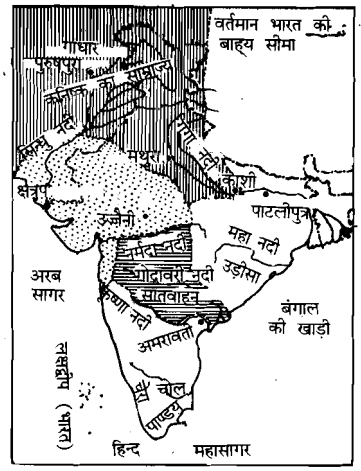

चित्र 4.7 भारत के विभिन्न साम्राज्य (लगभग 150 ईसवी)

दक्षिण भारत में यह समय शिल्प तथा वाणिज्य के इतिहास में सबसे अधिक वैभवशाली समय था। तत्कालीन शिलालेखों में बुनकरों, स्वर्णकारों, रंगसाज़ों, जौहरियों, मूर्तिकारों तथा धातु एवं हाथी दाँत के कारीगरों का उल्लेख किया गया है। इससे इस बात का पता लगता है कि ये शिल्प बहुत विकसित थे। उस समय के लोहे के औज़ार और सामान जैसे कि करछी, उस्तरे, कुल्हाड़ियाँ, हँसिए, फावड़े, खेती के फाल आदि आंध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र के करीमनगर तथा नालगोंडा ज़िलों में पाये गये हैं (चित्र 4.8) सीसे, तांबे, काँसे, चांदी तथा सोने के सिक्के भी पाये गये है। इनमें से कई सिक्के सातवाहन राज्य के हैं। इससे यह पता चलता है कि उन्होंने लौह-धातु-विज्ञान में ही नहीं बल्कि पीतल, जस्ता, ऐंटीमनी आदि के धातु कर्म में भी बहुत बड़ी महारत हासिल कर ली थी। कपड़ा बनाना, रेशम की बुनाई तथा हाथी दाँत, काँच और मोतियों से विलास की वस्तुएँ भी बनायी जाती थीं। दक्षिण भारत के कुछ शहरों में रंगाई उद्योग एक फलता-फूलता उद्योग था। ईंटों के बने रंगाई के हौज, जो पहली से तीसरी शताब्दी के थे, तमिलनाडु में उरईयूर तथा अरिकामेडू की खुदाई में पाये गये हैं। पहियों द्वारा चलने वाले कोल्हू से तेल निकाले जाने से तेल के उत्पादन में वृद्धि हो गयी।

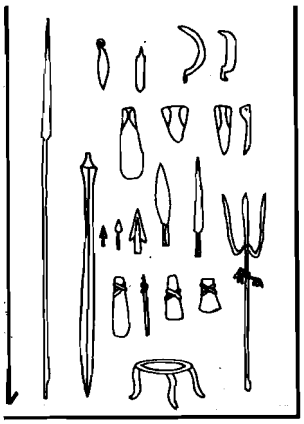

चित्र 4.8 दक्षिण भारत के विभिन्न स्थानों में स्थित समाधियों से प्राप्त लोहे के औज़ार और अन्य वस्तुएं। हँसिया, छुरा, कुल्हाड़ी, तीर के सिरे भाले के सिरे, भाला, तलवार, त्रिशूल और तिपाई पर ध्यान दीजिए।

उस समय समुद्री मार्ग से बड़े पैमाने पर व्यापार होता था। यह ज्ञान, कि मानसूनों से नौकायन में काफ़ी सहायता मिलती है, समुद्री मार्ग से व्यापार करने वाले व्यापारियों के लिए काफ़ी लाभदायक सिद्ध हुआ। अफ्रीका के बंदरगाहों को लोहा तथा इस्पात की वस्तुएँ जैसे कि छुरी-काँटे आदि, निर्यात की जाती थीं। मलमल, मोती, जवाहरात, हीरे तथा मसाले रोम को निर्यात किये जाते थे। इस फलते-फूलते उद्योग के कारण सातवाहनों द्वारा शासित नगरों की समृद्धि बढ़ गयी।

किंतु इन साम्राज्यों का तीसरी शताब्दी के बाद पतन शुरू हो गया। चौथी शताब्दी के आरंभ में गुप्त वंश के उदय के साथ भारतीय साम्राज्यों का महान् युग अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। अब हम गुप्त काल में सामाजिक संगठनों का वर्णन करेंगे और देखेंगे कि उस समय इससे विज्ञान तथा प्रौद्योगिक के विकास में किस प्रकार सहायता मिली।

4.3 गुप्त काल

गुप्त साम्राज्य काफ़ी बड़े भू-भाग पर फैला हुआ था। इसका क्षेत्र उत्तर, दक्षिण पूर्वी तथा पश्चिमी भारत तक फैला हुआ था। सांस्कृतिक दृष्टि से चंद्रगुप्त द्वितीय (380-415 ई.) के राज्य में इसका विकास चरम सीमा पर था (देखिए चित्र 4.9)। यह उपयोगी होगा कि हम लगभग 500 वर्ष के इस काल की कुछ विशेषताओं पर विचार करें। तब आप समझ सकेंगे कि इस युग को भारतीय विज्ञान का स्वर्ण युग क्यों कहा गया है।

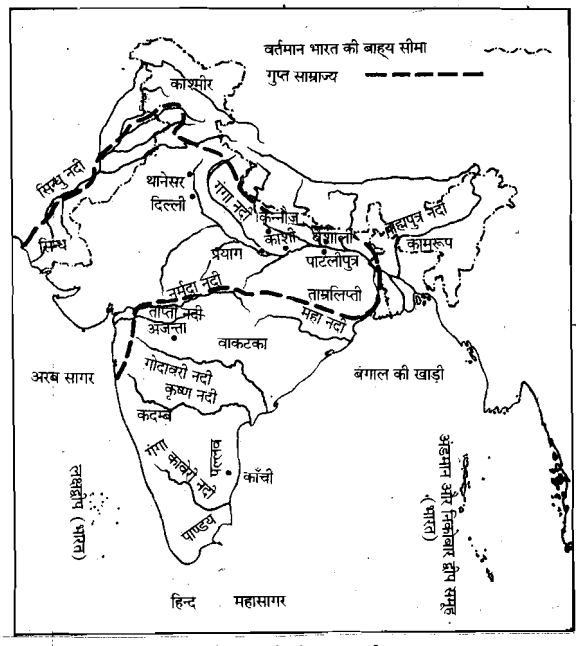

चित्र 4.9 चौथी शताब्दी के अन्त में गुप्त साम्राज्य।

4.3.1 सामाजिक संगठन

गुप्त साम्राज्य में भी उत्पादन का मुख्य साधन कृषि ही था। मौर्यों द्वारा आरंभ किया गया भूमि-अभिग्रहण का कार्य गुप्त सम्राटों ने भी जारी रखा। समुद्रगुप्त ने गंगा, नर्मदा और महानदी की घाटियों में स्थित जंगल के अनेक राज्यों को जीतकर इस दिशा में अंतिम प्रयास किया। किंतु इस काल में भूमि-व्यवस्था मौर्य काल में अपनायी गयी भूमि-व्यवस्था से एकदम भिन्न थी। साफ़ की गयी भूमि पर राज्य का स्वामित्व एवं नियंत्रण काफ़ी हद तक कम हो गया और भूमि अब लोगों के हाथों में आ गयी। लोगों को अपनी भूमि का प्रबंध करने तथा कर वसूल करने की अनुमति देने के लिए कानून बनाये गये। इससे राज्य का कोई सरोकार न रहा कि वे लोग स्वयं खेती करते थे या नहीं। अधिकांश गुप्त सम्राटों का अपना धर्म चाहे जो भी रहा हो, जहाँ तक राज्य का संबंध था, वे धर्म-निरपेक्ष थे। बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा परंपरागत हिंदू संगठनों को अनुदान के माध्यम से सहायता दी जाती थी तथा संरक्षण प्रदान किया जाता था।

किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति पहले वंश परंपरा के आधार पर जानी जाती थी पर अब कुछ हद तक उस व्यक्ति की संपत्ति उसकी सामाजिक स्थिति का मापदंड बन गयी थी। इस प्रकार ब्राह्मणों का महत्व कम हो गया। कृषि को महत्व देने तथा दस्तकारी की वस्तुओं का उत्पादन आरंभ होने से शूद्रों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ। समाज में कौन क्या करता है, यह अधिक महत्वपूर्ण हो गया। यहाँ तक कि ब्राह्मणों को भी धार्मिक अनुष्ठानों के अलावा दूसरे काम करने पड़े

पिछले काल की तुलना में इस काल में कठोर राजकीय नियंत्रण हटा देने का काफ़ी अच्छा प्रभाव पड़ा, क्योंकि इससे लोगों को कार्य में पहल करने की प्रेरणा मिली। इससे ब्राह्मणों का प्रभाव कम होने के साथ-साथ कृषि पर आधारित समाज पर कठोर वर्ण-व्यवस्था का प्रभाव भी कम होना शुरू हो गया।

अब तक हमने गुप्त काल में सामाजिक संगठनों के स्वरूप की चर्चा की। हम पाते हैं कि उस काल में सामाजिक ढाँचा मौर्य साम्राज्य के ढाँचे से काफ़ी भिन्न था। अब हम आपको गुप्त साम्राज्य में तकनीकों और शिल्पकला में हुए सुधार के बारे में बताइएंगे।

4.3.2 तकनीकों और शिल्पकला में सुधार

इस काल में नयी तकनीकों और बीजों के कारण कृषि उत्पादन में तेज़ी आयी। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि शिल्पकला में गुणवत्ता के साथ-साथ विविधता की दृष्टि से भी काफ़ी प्रगति हुई। हम इस खंड में कृषि तथा शिल्पकला में हुए सुधार की चर्चा करेंगे। हम आपको यह भी बताएँगे कि व्यापार में वृद्धि के कारण इस प्रक्रिया में किस प्रकार योगदान मिला।

कृषि

काली मिर्च और मसालों की पैदावार घरेलू खपत तथा निर्यात, दोनों के लिए की जाती थी। विभिन्न किस्म की फसलें, जैसे चावल, गेहूँ, जौ, तिल, दालें, कई प्रकार की सेम एवं मसूर, तथा सब्ज़ियाँ जैसे ककड़ी, प्याज़, लहसुन, सीताफल, तथा पान आदि का उत्पादन किया जाता था। कई प्रकार के नये फल जैसे कि नाशपाती तथा आड़ू की पैदावार भी पहली बार शुरू की गयी। यह सब किसी संयोग से नहीं हुआ। इसके लिए बाक़ायदा नियम-पुस्तिकाएँ बनायी गयी थीं। इनमें कई बातों की जानकारी दी जाती थी। जैसे प्रत्येक पौधे के लिए मिट्टी की किस्म और उसका गुण क्या होना चाहिए, पौधों में कौन-कौन सी बीमारियाँ लग सकती हैं, पौधों के बीच फ़ासला कितना होना चाहिए तथा साथ ही बुवाई की तकनीकें क्या हैं अर्थात् बुवाई के पहले मिट्टी कैसे तैयार की जाती है, आदि। इन पुस्तिकाओं में अनाज, सब्जियों तथा फलों की किस्मों के लिए नये-नये तरीके दिये गये थे। विभिन्न किस्म की मिट्टी के लिए हलके फालों के वज़न और आकार निर्धारित कर दिये गये और इस प्रकार कृषि-औज़ारों के लिए लोहे का इस्तेमाल एक आम बात हो गयी।

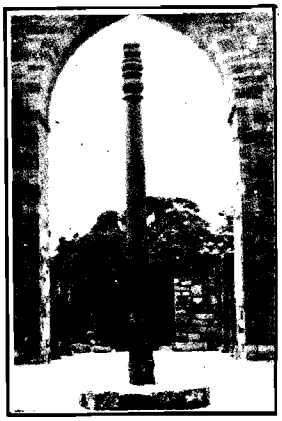

चित्र 4.10 दिल्ली स्थित महरौली में लौह स्तम्भ

शिल्पकला

धातु कर्म तथा बुनाई की कला में इस काल में बहुत अधिक प्रगति हुई। जंग न लगने वाले लोहे तथा ताँबे के मिश्र-धातु बनाये जाते थे तथा उनका प्रयोग जटिल किस्म की असैनिक तथा सैनिक इस्तेमाल की वस्तुएँ बनाने के लिए किया जाता था। इन वस्तुओं की गुणवत्ता इतनी अच्छी होती थी कि उनका बड़े पैमाने पर अफ्रीका जैसे देशों में निर्यात किया जाता था। इन वस्तुओं के डिज़ाइन पर कुछ हद तक ग्रीक-रोमन एवं मध्य एशियाई प्रभाव था। किंतु कुल मिलाकर उनका स्वरूप स्थानीय ही था (चित्र 4.10)।

बुनाई में सूती तथा रेशमी कपड़े बनाने की तकनीकों में काफ़ी निखार आ गया था। रंगों का निर्माण तथा कपड़ों की रंगाई में उनका बड़े पैमाने पर इस्तेमाल शुरू हो गया था। भारतीय वस्त्र ख़ास कर बनारस एवं बंगाल के वस्त्र अपने हल्के वज़न और सुंदर बुनावट एवं तंतु विन्यास के लिए प्रसिद्ध हो गये। वे वस्त्र पश्चिमी देशों में भी लोकप्रिय हुए जिससे इनका निर्यात व्यापार की एक महत्वपूर्ण सामग्री बन गयी थी।

राज्य के हस्तक्षेप में कमी आने के फलस्वरूप इस नयी व्यवस्था में कारीगरों या शिल्पकारों की संस्थाएँ बन गयीं जो काफ़ी शक्तिशाली और महत्वपूर्ण हो गयीं। उन्हें काफ़ी स्वतंत्रता प्राप्त थी तथा व्यक्तियों के बीच प्रायः अनुबंध होते थे; यहाँ तक कि राजकीय अधिकारियों के साथ भी करार किये जाते थे। इस 'श्रेणी' के शिल्पकार लोगों से पूँजी उधार लिया करते तथा उन्हें ब्याज सहित रकम वापस लौटा दिया करते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि बढ़ते हुए व्यापार के कारण शिल्पकला में सुधार की दिशा में काफ़ी सहायता मिली।

व्यापार

जैसे-जैसे आंतरिक तथा बाहरी व्यापार का अनुपात तथा उसकी मात्रा तेज़ी से बढ़ती गयी, वैसे-वैसे वस्तुओं का सीधे उत्पादन करने वालों का महत्व बढ़ता गया। जिन क्षेत्रों में पहले जाना भी मुश्किल था तथा जो बसे हुए नहीं थे, उनके खुल जाने, और परिवहन, संचार तथा व्यापारिक मार्ग की बेहतर सुविधाओं के कारण व्यापार में काफ़ी वृद्धि हुई। एक विस्तृत साम्राज्य में दूर तक फैले हुए बड़े-बड़े बाज़ारों के अस्तित्व से फलते-फूलते व्यापार में मुद्रा प्रसार को बहुत बढ़ावा मिला। कारीगरों की तरह ही व्यापारियों की संस्थाएँ भी अस्तित्व में आयीं जिन्हें "श्रेणी" कहा जाता था। मुख्य व्यापारिक मार्ग गंगा और सिंधु नदियों के आस-पास थे। वस्तुओं के खरीदने और बेचने पर अभी तक शासन का नियंत्रण था। कुषाणों, सातवाहनों और गुप्त वंश द्वारा स्थापित राजनयिक संबंधों से प्रोत्साहित तेज़ी से विकसित होते हुए विदेशी व्यापार से आंतरिक व्यापार में वृद्धि हुई। विशेष रूप से मानसून के ज्ञान के प्रयोग से भारतीयों द्वारा जहाज़रानी में सुधार और जलयानों के नये नमूनों ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारतीयों ने अरबों, भूमध्य देशों, ख़ासकर रोम, अफ्रीका, दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों जैसे जावा, सुमात्रा और श्रीलंका के साथ व्यापार किया। इन संबंधों ने भी व्यापार की वृद्धि में सहयोग दिया (चित्र 4.11)।

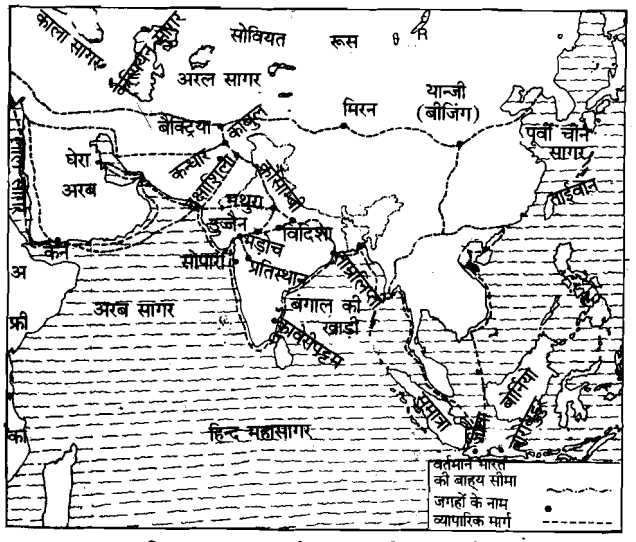

चित्र 4.11 प्राचीन व्यापारिक मार्ग।

उपर्युक्त वर्णन से उस भारतीय समाज की एक ऐसी झलक मिलती है जहाँ वस्तुओं का उत्पादन और विनिमय स्वदेशी बाज़ारों के फैलाव और विदेशी व्यापार में वृद्धि के कारण ज़ोरों पर था। इन गतिविधियों से उत्पादन की नयी तकनीकों, बेहतर प्रबंध के लिए नये प्रकार के गणित तथा अंकज्ञान और निर्माण, संचार तथा जहाज़रानी के नये तरीकों की आवश्यकता महसूस हुई। यह बात उल्लेखनीय है कि नयी तकनीकों की यह सामाजिक माँग ऐसी परिस्थिति में पैदा हुई जब पूर्वकाल का कठोर प्रशासनिक नियंत्रण व्यक्तिगत उपक्रम के पक्ष में कुछ कम कर दिया गया था। पुराने विशिष्ट शासक कुछ हद तक ढीले पड़ रहे थे। इस समय एक सीमा तक सामाजिक गतिशीलता आयी जिससे संभवतः शिक्षित और अशिक्षित वर्ग में संपर्क स्थापित होने शुरू हो गये थे। यह एक ऐसा समाज था जहाँ पुरानी जाति व्यवस्था जो कमज़ोर पड़ चुकी थी, कायम थी पर श्रम विभाजन के आधार पर एक नयी जाति व्यवस्था भी अस्तित्व में आयी जो उस समय तक सुदृढ़ नहीं थी।

ऐसे ही काल में भारत में गणित और खगोल विज्ञान के क्षेत्रों में महान् प्रगति हुई। इन प्रगतियों के बारे में हम आगे की इकाइयों में विस्तार से चर्चा करेंगे। इससे पहले कि हम आगे बढ़ें, अपनी प्रगति को परखने के लिए निम्नलिखित प्रश्नों को हल कीजिए।

बोध प्रश्न 3

क) गुप्त साम्राज्य में सामाजिक संगठन की कोई तीन विशेषताएँ बताइए जिनके कारण विज्ञान और प्रौद्योगिकी में विशेष सुधार हुआ।

.....

.....

.....

.....

ख) निम्नलिखित में से कौन-से चार नव प्रवर्तन गुप्त कालीन तकनीकी एवं दस्तकारी से संबंधित हैं? सामने दिये गये खाने में सही का चिह्न (√) लगाएँ।

i) सीमेंट और कंकरीट के भवन। ☐
ii) विभिन्न प्रकार की फ़सलें, फल, सब्ज़ियाँ और मसाले, बोने और उगाने की प्रक्रिया में नयी तकनीकों और औज़ारों का प्रयोग। ☐
iii) जंग न लगने वाला लोहा और तांबे की मिश्र धातुएँ बनाना। ☐
iv) पवन-चक्कियों और पनचक्कियों का प्रयोग। ☐
v) बढ़िया आकार और हल्के वज़न के कपड़ों का निर्माण तथा कपड़ों की रंगाई। ☐
vi) काँसे के फालों का प्रयोग। ☐
vii) अच्छे जहाज़ों से जहाज़रानी में सुधार तथा मानसून का ज्ञान। ☐

4.3.3 गणित शास्त्र के क्षेत्र में उपलब्धियाँ

हम जानते हैं कि भारत में गणित शास्त्र की परंपरा प्राचीन-युग से चली आ रही है। हम इकाई 2

तथा इकाई 3 में "शुल्व ज्यामिति" का ज़िक्र कर चुके हैं। यह परंपरा जैन गणितज्ञों ने भी बनाये रखी। उन्होंने 500 ई.पू. से 500 ई. तक की लंबी अवधि में इसमें बहुत बड़ा योगदान दिया। यह संभव है कि ग्रीक लोगों के साथ संपर्क बढ़ने के कारण, भारतीय गणितज्ञों पर उनका प्रभाव पड़ा होगा। इसके अतिरिक्त, जैन परंपरा जो गुप्त काल में उत्तर से दक्षिण भारत में फैली थी अब मैसूर तथा उज्जैन की गणित शाखा के भी संपर्क में आयी। इस विकास-क्रम की ठीक पद्धति जो भी रही हो परंतु गुप्त काल में गणित, बीजगणित तथा संख्याओं की एक सशक्त धारा उभरकर सामने आयी। ये सूत्र अथवा नियम इस सीमा तक खगोल-विज्ञान से संबंधित गणनाओं के लिए आधार बन गये कि उस समय के ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर तथा आर्यभट्ट जैसे महान् खगोल विज्ञानी, गणितज्ञ तथा खगोल-विज्ञानी, दोनों ही रूपों में प्रसिद्ध थे। यह परंपरा गुप्त-काल में ही समाप्त नहीं हो गयी बल्कि भास्कर के समय (बारहवीं शताब्दी) तक चलती रही। यह पश्चिम की ओर भी गयी तथा इसने अरबी गणितज्ञों को भी काफ़ी प्रभावित किया। आइए, देखें इससे गणित के क्षेत्र में क्या प्रगति हुई।

जैनों का गणित-शास्त्र

जैन साधु अपनी धार्मिक शिक्षा में गणित के ज्ञान को बहुत महत्व देते थे। उमास्वाति तथा अन्य लोगों द्वारा लिखित स्थानांग-सूत्र (100 वर्ष ई.पू.), सूर्यप्रज्ञापति, भद्रबाहवी संहिता (300 वर्ष ई.पू.), तथा क्षेत्रसमास (150 ई.) में क्षेत्रमिति (mensuration), करणी (surds), भिन्न (fraction), क्रमचय और संचय (permutations & combinations), ज्यामिति (geometry), घातांक-नियम (law of indices) और संख्याओं के वर्गीकरण (classification of numbers) आदि का विस्तार से विवरण दिया गया है। जैनियों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले ये विषय तथा विभिन्न तकनीकी शब्दावलियाँ बाद में विद्वानों के गणितीय ग्रंथों में अपना ली गयीं, चाहे उनकी धार्मिक विचारधारा जो भी रही हो। अब हम जैन गणितज्ञों की कुछ विशेषताओं का उल्लेख करेंगे। उन्होंने क्षेत्रमिति में यह स्पष्ट किया कि किसी वृत्त के व्यास, परिधि, चाप और किसी वृत्त की जीवा में क्या संबंध है (चित्र 4.12) । इस प्रक्रिया में उन्होंने करणी का अनुमानित मूल्य निकालने के हल प्रस्तुत किये। हम पाते हैं कि जैनी बड़े और जटिल गणितीय गुणनफलों का प्रयोग करते थे। मिश्रित संख्याओं का हल निकालने में वे प्रायः अनुमानित मूल्य का सहारा लेते थे। जब भी भिन्न के भाग का मान 1/2 से अधिक होता, तो वे उसके स्थान पर 1 मान लेते थे तथा 1/2 से कम होने पर वे उसे छोड़ देते थे। इस प्रकार 315089 $\frac{218}{630}$ के स्थान पर वे 315089 रखते थे तथा 318314 $\frac{550}{636}$ के स्थान पर 318315 रखते थे।

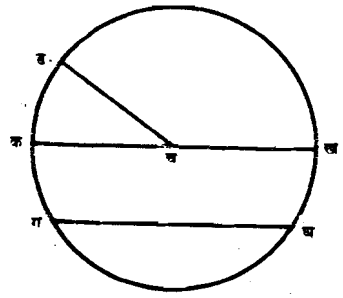

चित्र 4.12 एक वृत्त, जिसका केन्द्र च पर स्थित है, व्यास क ख है, ग घ जीवा है और क ङ चाप है।

भगवती-सूत्र (ई.पू. पहली शताब्दी) में, जैनी "n" मूलभूत वर्गों में से एक बार में एक (एकैक संयोग), एक बार में दो (द्विक संयोग), एक बार में तीन (त्रिक संयोग) अथवा एक बार में बहुत सी संख्याएँ लेकर संचय की संभावित संख्याओं के बारे में अनुमान लगाते थे। वे हर स्थिति में क्रमचय और संचय के सूत्रों को, जिन्हें हम आज जानते हैं, ज्ञात करने में सफल हुए।

जैनियों ने इस प्रकार के सूत्र निकाल लिये थे :

$${}^{n}C_1 = n$$

$${}^{n}C_2 = \frac{n(n-1)}{2\times 1}$$

$${}^{n}C_3 = \frac{n(n-1)(n-2)}{3\times 2\times 1}$$

$${}^{n}P_1 = n$$

$${}^{n}P_2 = n(n-1)$$

$${}^{n}P_3 = n(n-1)\,n(n-2)$$

संख्याओं के संबंध में सभी जैन ग्रंथों में प्रयुक्त जो एक सन्निहित सूत्र है, वही आधुनिक घातांक नियम है;

$a^m \times a^n = a^{(m+n)}$, तथा $a^{(m)n} = a^{mn}$

जहाँ m तथा n या तो पूर्णांक हैं अथवा भिन्न की संख्याएँ हैं।

भारत में बीजगणित

ब्रह्मगुप्त के समय से (लगभग 598 ई.) गणितशास्त्र की एक पृथक शाखा के रूप में बीजगणित का उदय हुआ। बीजगणित के भारतीय विद्वानों ने संभवतः इतिहास में पहली बार रंगों अथवा रत्नों के संक्षिप्त नामों को अज्ञात मात्राओं, संक्रियाओं, घातों, मूल आदि के प्रतीक के

जैन किसी ऋणात्मक संख्या को अर्थात् —2 को $_{\circ}2$ से दर्शाते थे।

रूप में व्यक्त किया। उन्होंने ऋणात्मक मात्राओं को एक बिंदु द्वारा व्यक्त किया। यदि किसी संख्या में बिंदु नहीं होता था तो इसे धनात्मक मान लिया जाता था। इनमें से कुछ अंकन पद्धतियाँ तालिका 4.1 में दी गयी हैं।

तालिका 4.1 कुछ वर्तमान गणितीय संकेत चिन्ह और उनके संगत प्राचीन गणितीय चिन्ह

आज के संकेत चिह्न	प्राचीन काल के संकेत चिह्न
चर	चर
x	मा (माणिक्य)
y	नी (इंद्रनील)
z आदि	मु (मुक्ता) आदि
संक्रियाएँ	संक्रियाएँ
+	यु (युत)
—	+(ब्रह्मी के क्षय K का चिह्न)
×	गु (गुणा)
÷	भा (भाग)
$(\ )^2$	व (वर्ग)
$(\ )^3$	घ (घन)
$(\ )^4$	व-व
$\sqrt{\ }$	मू (मूल)

उन्होंने बीजगणित समीकरणों को तीन वर्गों में बाँटा था :

i) एक अज्ञात संख्या में समीकरण
ii) कई अज्ञात संख्याओं में समीकरण
iii) अज्ञात संख्याओं के गुणनफल का समीकरण

रैखिक तथा द्विघातीय समीकरणों के हल उन्हें मालूम थे। एक से अधिक अज्ञात संख्याओं के प्रथम तथा द्वितीय घात तक अनिश्चित समीकरणों के हल निकालना भी वे जानते थे। उदाहरण के तौर पर :

$by = ax + c$
तथा $ax^2 + c = y$

उच्चतर घात के समीकरणों के हल निकालने का भी उन्होंने प्रयास किया।

संख्याएँ

बीजगणित के अलावा, प्राचीन सभ्यता का संभवतः सबसे बड़ा योगदान संख्याओं का आविष्कार था। संख्याओं को शब्दों तथा अक्षरों द्वारा दर्शाने की आवश्यकता तब हुई जब मनुष्य के सामने बहुत बड़ी तथा बहुत छोटी संख्याओं की समस्या आई। उदाहरण के तौर पर, खगोल विज्ञान में या फिर मूल्यवान धातुओं को सही-सही तोलने में। हम यह पहले ही बता चुके हैं कि इस काल में व्यापार तथा नौसेना संचालन में विस्तार होने के कारण विज्ञान के इन क्षेत्रों को बढ़ावा मिला। अब मानव अपने व्यापारिक लेन-देन, तारों की संख्याओं और दूरियों अथवा तारों के उदय होने की अवधि को व्यक्त करने के लिए दिनों की संख्या को खड़ी पाइयों से व्यक्त नहीं कर सकता था, जैसा कि हड़प्पा की सभ्यता के समय आम प्रथा थी (चित्र 4.13)।

इस काल में जिन संख्यात्मक अंकन पद्धतियों का प्रयोग किया जाता था उनमें से कुछ अर्थात् खरोष्ठी तथा ब्रह्मी प्रणालियों को तालिका 4.2 में दर्शाया गया है। जहाँ तक खरोष्ठी संख्याओं का संबंध है, वे अशोक, शक (saka), पार्थियन तथा कुषाणों के शिलालेखों में पायी जाती हैं। उनका समय ई.पू. चौथी शताब्दी से लेकर ईसा के बाद दूसरी शताब्दी तक है। इस प्रणाली में आपको केवल 300 तक संख्याएँ मिलेंगी जो 1 से शुरू होकर 10 तक और फिर 10 से 100, 200 तथा 300 तक हैं। मध्यवर्ती संख्याओं को योगात्मक सिद्धांत के अनुसार लिखा जाता था। कुछ उदाहरण नीचे दिये गये हैं :

आज की संख्याओं को :	22	74	122	274
इस प्रकार लिखा जा सकता है :	2+20	4+70	2+20+100	4+70+200
खरोष्ठी चिह्न में :	II3	X7333	II3Ꮭ1	X73332II

खरोष्ठी संख्याओं का प्रयोग करते हुए आप कुछ अन्य संख्याएँ लिखने का प्रयास कर सकते हैं। है न यह मज़े की बात? ब्राह्मी पद्धति में 20,000 तक की संख्याएँ लिखी जाती थीं। इसमें और भी सूक्ष्म संकेतों का प्रयोग किया जाता था। किंतु ये दोनों पद्धतियाँ बहुत कठिन थीं जबकि इनकी तुलना में दशमलव प्रणाली अधिक आसान है, जो आज प्रयोग की जाती है।

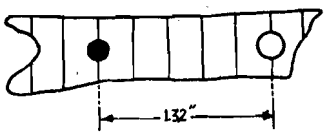

चित्र 4.13 सिंधु घाटी से मिले पैमाने का रेखाचित्र।

तालिका 4.2 खरोष्ठी और ब्राह्मी लिपियों के अंक।

दशमलव या शून्य प्रणाली का सबसे पहला उल्लेख हमें एक गुर्जर अनुदान पत्र (Gurjara grant plate) लेख में 595 ई. में मिलता है, उसके बाद ग्वालियर, महिपाल, बौक आदि के अन्य शिलालेखों में पाते हैं। ऐसा लगता है कि इनका प्रयोग उस समय के तथा बाद के खगोल शास्त्रियों और ज्योतिषियों द्वारा किया गया और उसमें लगातार सुधार किया जाता रहा है। अरबों ने इस पद्धति को अपनाया और पहले की संख्याओं में इतना सुधार किया कि आज इन्हें अरबी संख्यापद या संख्याएँ कहा जाता है।

भारत में, संख्याओं को वस्तुओं, जीवों अथवा विचारों के नाम से व्यक्त किया जाता था। शब्दों के नाम संख्याओं के साथ उनके संबंध पर विचार करने के बाद चुने जाते थे। उदाहरण के तौर पर :

i) सिफर, शून्य या "0" को आकाश, अंबर, शून्य द्वारा व्यक्त किया जाता था।
ii) 1 को पृथ्वी के पर्यायवाची शब्दों जैसे– भू, धरा, पृथ्वी, आदि अथवा चंद्रमा के पर्यायवाची शब्दों जैसे इंदु, चंद्र, आदि द्वारा।
iii) 2 को यम, आश्विन (युग्म), पक्ष (पक्षी के दो पंख) या कर (दो हाथ) आदि से।
iv) 3 को (त्रि), गुण (त्रि) जगत्, अग्नि, रमा आदि द्वारा।
v) 4 को वेद, समुद्र, आदि से।
vi) 5 को भूतों (तत्वों), इन्द्रियों (स्पर्शेन्द्रियाँ) अथवा सार से व्यक्त किया जाता था।

बड़ी संख्याओं को लिखने का तरीका काफ़ी कठिन था। इसलिए शब्दों को जोड़कर बड़ी संख्याओं को व्यक्त किया जाता था। इस प्रकार संख्या पदों को श्लोकों में बायें से दायें लिखा जाता था।

किंतु जिन संख्याओं को वे दर्शाते हैं उन्हें दायें से बायें लिखा जाता है। उदाहरण के तौर पर, 14,400 की संख्या को इस प्रकार लिखा जाता था :

ख-ख-वेद-समुद्र-सीतारसमय :

जब इन्हें संख्यात्मक रूप में दायें से बायें व्यक्त किया जाता है, तो यह 14400 पढ़ा जाएगा। उसी प्रकार हमने अन्य उदाहरणों को तालिका 4.3 में दिया है। (इस तालिका में 6, 7, 8 और 9 संख्याओं के लिए शब्द देखें।)

तालिका 4.3

	शब्द	संख्याएँ
1	नव-वसु-गुण-रस रस :	66389
2	स्वर-यम-यम-द्वि	2227
3	शून्य-द्वि-पंच-यम	2520
4	वसु-वेद-यम-ख-धारा	.....
5	.....	5379

बोध प्रश्न 4

उपयुक्त संख्या या शब्द लिखकर तालिका 4.3 में खाली स्थानों को भरिए।

आप संभवतः कुछ और अधिक संख्याएँ अपने पूर्वजों की भाषा में लिखना चाहें!

इस प्रकार हम देखते हैं कि पहली बार एक ऐसी प्रणाली विकसित की जा रही थी, जिससे संख्याओं को लिखित या बोलने की भाषा के रूप में व्यक्त किया जा सकता था।

इस खंड में, हमने 1500 से 2000 वर्ष पूर्व गणितशास्त्र के क्षेत्र में हुई महत्वपूर्ण प्रगति का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया। आइये, अब हम देखते हैं कि खगोल विज्ञान के क्षेत्र में क्या प्रभावशाली घटनाएँ घटीं।

4.3.4 खगोल विज्ञान के क्षेत्र में उपलब्धियाँ

यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं है कि गुप्त काल में खगोल-विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई थी, तथापि आविष्कारों और सिद्धांतों का ठीक-ठीक एवं क्रमवार निर्धारण करना मुश्किल है। इस बात का पता लगाना कठिन है कि इस क्षेत्र में भारत एवं ग्रीक के प्राचीन ग्रंथों का कितना प्रभाव पड़ा। ज़्यादातर सूचनाओं का पता बाद के खगोल शास्त्रियों द्वारा रचित भाष्यों या व्याख्याओं से चलता है। ये लोग अपने ग्रंथों को प्राचीन ऋषियों के ग्रंथ बताते थे। इसका कारण यह था कि इनके ग्रंथों को समकालीन विद्वानों द्वारा मान्यता मिल जाए। इस संबंध में कितनी जानकारी प्राप्त थी, इसका पता लगाना इस वजह से और भी मुश्किल हो जाता है कि हमारे वैज्ञानिक कल्पनाओं को तथ्यों से जोड़ देते थे या फिर त्रुटिपूर्ण वैज्ञानिक सिद्धांतों के साथ मिलाकर पेश करते थे (जैसे राहु और केतु)। इसका कारण यह था कि वे समाज में मान्यता प्राप्त करना चाहते थे।

हमने इकाई 3 में देखा कि भारतीय खगोल विज्ञान का मूल वैदिक काल में था। इसका विवरण "सिद्धांत" नामक ग्रंथों में दिया गया है। उस काल के भारतीय खगोल या ज्योतिष विज्ञान में सूर्य, चंद्र तथा ग्रहों की स्थिति का ठीक-ठीक ब्यौरा रखा जाता था। किंतु यह कोई तर्कपूर्ण एवं विश्वसनीय सिद्धांत नहीं दे सका जिससे यह पता चलता कि ग्रह मंडल प्रणाली कैसे कार्य करती है।

आर्यभट्ट (476 ई.) गुप्त काल के महान् खगोलशास्त्री थे। उन्होंने ग्रह मंडल की गति के सिद्धांत को इस रूप में प्रस्तुत किया जो अधिक विश्वसनीय था तथा समस्याओं का समाधान कर सकता था। उन्होंने सूर्य, चंद्र तथा ग्रहों की गति का अध्ययन करके अपने सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उनका यह पक्का विश्वास था कि पृथ्वी घूमती है और आकाश स्थिर है। उन्होंने ग्रहण लगने का वैज्ञानिक कारण बताया जो इस प्रचलित धारणा के बिलकुल विपरीत था कि "राहु" और "केतु" के कारण ग्रहण लगता है।

त्रिकोणमितीय तालिकाएँ बनाने का श्रेय आर्यभट्ट को जाता है। उन्होंने त्रिकोणमितीय तालिकाओं को ज्यामितीय ढंग से परिकलित (compute) किया और ज्या (sine) तथा कोज्या (cosine) के मानों का प्रयोग अपनी खगोल वैज्ञानिक गणनाओं में किया। इसके अलावा उन्होंने गणितीय तथा ज्यामितीय श्रेणियों (series) के योग के लिए सूत्र बनाये और Σn^2 तथा Σn^3 जैसी श्रेणियों का योग निकाला।

आर्यभट्ट के बाद वराहमिहिर आये (जन्म 505 ई.)। उन्होंने अपने ग्रंथ, बृहतसंहिता में आर्यभट्ट एवं उनसे पहले के खगोल विज्ञान संबंधी निष्कर्षों को संकलित किया। वराहमिहिर के साथ समस्या यह थी कि उन्होंने ज्योतिष का स्तर बढ़ाकर उसे वैज्ञानिक खगोल-विज्ञान के स्तर पर लाने का प्रयास किया। यह इसलिए संभव हुआ क्योंकि नियम बनाने वाले ब्राह्मणों ने उन पर ऐसा करने के लिए दबाव डाला। वराहमिहिर भी ब्राह्मण थे और राज-दरबार में कार्य करते थे। खगोल-विज्ञान पर अपना काम जारी रख सकने के लिए यह ज़रूरी था कि वे पुरोहितों और राजा का समर्थन प्राप्त करें। उनकी स्थिति शायद दयनीय थी और उन्हें विज्ञान की आवश्यकताओं और ऋषियों के आदेशों के साथ समझौता करना पड़ता था। कारण यह था कि ऋषियों के वचन सत्य एवं न टाले जा सकने वाले समझे जाते थे। अतः उन्होंने ज्योतिष को अपने खगोल विज्ञान संबंधी शोध प्रबंध के तीन प्रमुख घटकों में से एक के रूप में शामिल किया। जहाँ वे एक ओर अपनी जीविका चलाने के लिए राजाओं और राजकुमारों की जन्म कुंडलियाँ बनाते थे, वहीं दूसरी ओर अपनी वैज्ञानिक प्रतिभा का प्रदर्शन करते।

उदाहरण के तौर पर दो ग्रहणों के स्वरूप की चर्चा के बाद उस समय प्रचलित मत के अनुसार तथा अत्यंत वैज्ञानिक आधार पर उन्होंने उन लोगों के प्रति शिकायत की जो इस विषय में नहीं जानते थे। उन्होंने कहा कि आम आदमी हमेशा ही यह कहता आ रहा है कि ग्रहण का कारण राहु है। यदि राहु नहीं दिखाई देता और ग्रहण नहीं लगता तो उस समय ब्राह्मण लोग अनिवार्यतः स्नान नहीं करते।

एक ओर तो जहाँ लोगों को वराहमिहिर से सहानुभूति हो सकती है क्योंकि उन्हें बहुत ही तनाव व कुंठा झेलनी पड़ी वहाँ दूसरी ओर उन्होंने प्राकृतिक घटनाओं को परावैज्ञानिक और अवैज्ञानिक के मेल से व्यक्त करने की परिपाटी चलायी। इससे संभवतः आर्यभट्ट के बाद भारतीय खगोल विज्ञान की उल्लेखनीय प्रगति रुक गयी। क्योंकि शताब्दी बीतने पर भी स्वयं खगोल शास्त्रियों को ही राहु-केतु के सिद्धांत से ग्रहण की स्थिति को स्पष्ट करने में कोई आपत्ति नहीं होती थी। ब्रह्मगुप्त ने (जन्म 598 ई.) जो एक महान् वैज्ञानिक थे, अपने ब्रह्मस्फुत सिद्धांत में घोषणा की कि "कुछ लोग सोचते हैं कि ग्रहण का कारण राहु नहीं है। किंतु यह एक गलत धारणा है क्योंकि वस्तुतः यह राहु ही है जो ग्रहण लगाता है। वेद जो कि ब्रह्मा के मुख से निकले भगवान के ही शब्द हैं, यही बताते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्होंने यह कथन इस बात की पूरी जानकारी के साथ दिया था कि ये आर्यभट्ट,वराहमिहिर तथा श्रीसेन के वैज्ञानिक सिद्धांतों के विरुद्ध जा रहे थे। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि यदि राहु आदि काल्पनिक माने जाते हैं, जैसा कि आर्यभट्ट और वराहमिहिर ने किया था तो उन्हें स्वर्गिक सुखों से वंचित होना पड़ेगा और यह सामान्यतः स्वीकृत धार्मिक सिद्धांत के बाहर हो जाएगा और इसकी कतई अनुमति नहीं हैं"।

हम पाते हैं कि विज्ञान तथा अ-विज्ञान की यह मिलावट जो भारतीय खगोल शास्त्रियों ने आर्यभट्ट के बाद शुरू की, उसके फलस्वरूप भारतीय खगोल विज्ञान के सामने मानो चुनौती नहीं रही। खगोल विज्ञान के स्थान पर ज्योतिष-शास्त्र हावी होने लगा। जो दुनिया में सबसे शक्तिशाली वैज्ञानिक विचारधारा थी. वह राजनीति एवं धर्मान्धता का शिकार बन गयी। जब हम आर्यभट्ट के सुझाव कि पृथ्वी घूमती है और ग्रह स्थिर है पर विचार करते हैं तो यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है। अथर्ववेद ने कर्मकांडो का सहारा लेकर कहा कि पृथ्वी स्थिर थी और जो इस कथन के विरुद्ध गया वह विधर्मी था। आधुनिक ऐतिहासिक अनुसंधान से यह ज़ाहिर होता है कि सभी खगोलशास्त्रियों ने या तो आर्यभट्ट के उपर्युक्त कथन को एकदम नज़रअंदाज़ कर दिया या फिर इसका जानबूझकर ग़लत अर्थ निकाला। वे अपने ब्राह्मण आचार्यों को यह दिखाना चाहते थे कि वे सच्चे हिंदू हैं जो वेदों में पूर्ण विश्वास करते हैं तथा विश्व को भूकेंद्रिक (geocentric)मानते है। कुछ मतों के अनुसार तो यहाँ तक संभावना है कि सूर्यकेंद्रीय परिकल्पना को मिटा देने के लिए पाण्डुलिपियों में भी जानबूझकर रद्दोबदल किया गया है।

बोध प्रश्न 5

नीचे दी गयी तालिका में कॉलम 1 में कुछ खगोलशास्त्रियों के नाम दिये गये हैं तथा कॉलम 2 में उनके द्वारा दिये कथन हैं। कौन सा कथन किस खगोलशास्त्री से संबंधित है, बताइए।

कॉलम 1	कॉलम 2
क) आर्यभट्ट	i) ग्रहण राहु और केतु द्वारा लगते हैं।
ख) वराहमिहिर	ii) पृथ्वी घूमती है तथा आकाश स्थिर है।
ग) ब्रह्मगुप्त	iii) पृथ्वी स्थिर है तथा सूर्य, चंद्र तथा ग्रह इसके चारों ओर घूमते हैं।
	iv) ग्रहण चंद्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ने के कारण लगता है।

भारतीय विज्ञान का गौरवशाली अध्याय हमेशा के लिये लुप्त नहीं हुआ था हालांकि गुप्त साम्राज्य के ह्रास के बाद इसका पतन आरंभ हो गया, जिसका अब हम संक्षेप में वर्णन करेंगे।

4.3.3 गुप्त साम्राज्य का पतन

ईसा की पांचवी शताब्दी के उत्तरार्ध तक, गुप्त साम्राज्य काफ़ी कमज़ोर हो गया था। हूणों ने उत्तर की ओर से आक्रमण करके न केवल पंजाब और राजस्थान पर अधिकार कर लिया बल्कि पूर्वी मालवा तथा मध्य भारत के भी बड़े भू-भाग पर अपना कब्ज़ा कर लिया था। हूणों के शिलालेख मध्य भारत में प्राप्त हुए हैं। गुप्त राजा जिन राज्यपालों को शासन करने के लिए नियुक्त करते थे, वे प्राय: स्वतंत्र होते थे। ईसा की छठी शताब्दी के शुरू तक उन्होंने अपने अधिकार से ही भूमि के रूप में अनुदान देना शुरू कर दिया। पश्चिमी भारत हाथ से निकल जाने पर व्यापार और वाणिज्य से प्राप्त होने वाला राजस्व गुप्त राजाओं को मिलना बंद हो गया। इससे सेना पर होने वाले खर्च तथा धार्मिक आदि कार्यों के लिए धन की कमी हो रही थी और धार्मिक साधन भी काफ़ी कम हो गये थे। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था टूटने लगी, वैसे-वैसे शिल्पकला और अन्य वस्तुओं की माँग भी तेज़ी से घटती गयी। नतीजा यह निकला कि कई कुशल कारीगरों ने जीविका चलाने के लिए दूसरे व्यापार अपना लिये। 473 ई. में गुजरात से मालवा को रेशम के बुनकरों का जाना एक ऐसा ही उदाहरण है।

इस प्रकार आंतरिक तथा बाह्य दोनों कारण (जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है) मिल गये और उससे गुप्त साम्राज्य का पतन आंरभ हो गया। टुकड़ों में बँटा यह साम्राज्य अब विज्ञान की प्रगति के लिए सामाजिक एवं बौद्धिक आधार प्रदान करने में असमर्थ हो गया। गुप्त साम्राज्य के पतन से भारतीय समाज अशांति और संघर्ष के एक लंबे दौर से गुजरने लगा। एक मात्र अपवाद दक्षिण भारत का चोल साम्राज्य था, जहाँ तकनीकी और शिल्प एक बार फिर गुप्त साम्राज्य की ही तरह फलने-फूलने लगे। अब हम आपको संक्षेप में बताएँगे कि भारत में इस्लाम के आने तक यहाँ क्या स्थिति थी।

4.4 संघर्ष का युग

750 ई. से 1000 ई. की अवधि में उत्तर-पूर्व में पाल साम्राज्य, उत्तर पश्चिम में प्रतिहार साम्राज्य तथा दक्षिण में राष्ट्रकूटों के बीच अधिकार जमाने के लिए संघर्ष चल रहा था। ये समय-समय पर उत्तर तथा दक्षिण भारत के क्षेत्रों पर भी नियंत्रण करते रहे। नवीं शताब्दी तक, चोल राजाओं ने पल्लवों, चालुक्यों, पांड्यों तथा राष्ट्रकूटों को हराकर दक्षिण भारत में अपनी शक्ति मजबूत कर ली थी।

उत्तर भारत में यह काल ठहराव और पतन का काल था। रोमन तथा ससेनियन साम्राज्यों के साथ भारत का व्यापार काफ़ी समृद्धशाली एवं लाभप्रद था। किंतु इन साम्राज्यों के पतन के कारण देश के व्यापार तथा वाणिज्य को गहरा धक्का लगा। इससे साम्राज्य के अंदर कई छोटे-मोटे रजवाड़े सिर उठाने लगे जो हमेशा अपने को स्वतंत्र घोषित करने की ताक में रहते थे। इन रजवाड़ों ने एक ऐसी अर्थव्यवस्था को जन्म दिया जिसमें ग्राम-समूह आत्मनिर्भर हो गये और इस प्रकार व्यापार को बढ़ावा नहीं मिला।

सासनिद वंश ने पर्शिया साम्राज्य (वर्तमान ईरान) पर सन् 227-637 ई. तक शासन किया।

इसके अलावा जाति-पाँति की प्रथा ने फिर से जड़े जमा लीं, जिसमें ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों को तरजीह दी जाती थी तथा शूद्रों को धार्मिक तथा सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। कुम्हार, बुनकर, सुनार, संगीतज्ञ, नाई, सड़क बनाने वाले तथा इसी प्रकार का अन्य कार्य करने वालों को छोटी जाति का समझा जाता था। बौद्धिक धरातल पर जो भी कोशिश होती उसका

उद्देश्य इस सुदृढ़ जाति-प्रथा को सही सिद्ध करना और उसे बरकरार रखना था। महिलाओं की सामाजिक स्थिति में भी गिरावट आ गयी। उन्हें बौद्धिक दृष्टि से कमज़ोर माना गया तथा वेदों के अध्ययन के अधिकार उन्हें नहीं दिये गये। वैदिक काल में जहाँ लड़कियों की विवाह योग्य आयु 16 वर्ष या 17 वर्ष रखी गयी थी, वहाँ इसे घटाकर 6 से 8 वर्ष कर दिया गया। इस प्रकार उनके व्यक्तिगत विकास का अवसर छीन लिया गया।

किंतु सामान्य रूप से पतन की इस अवस्था में लोगों द्वारा कुछ अच्छे प्रयत्न भी किये गये। आर्यभट्ट- II (लगभग 950 ई.) ने खगोल एवं गणित-शास्त्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। भास्कर-II (1114 ई.) ने अपना प्रसिद्ध गणित-शास्त्र एवं खगोल विज्ञान संबंधी ग्रंथ "सिद्धांत-शिरोमणि" लिखा जो चार खंडों में हैं। उन खंडों के नाम लीलावती, बीजगणित, गणिताध्याय तथा गोलाध्याय हैं (चित्र 4.14)

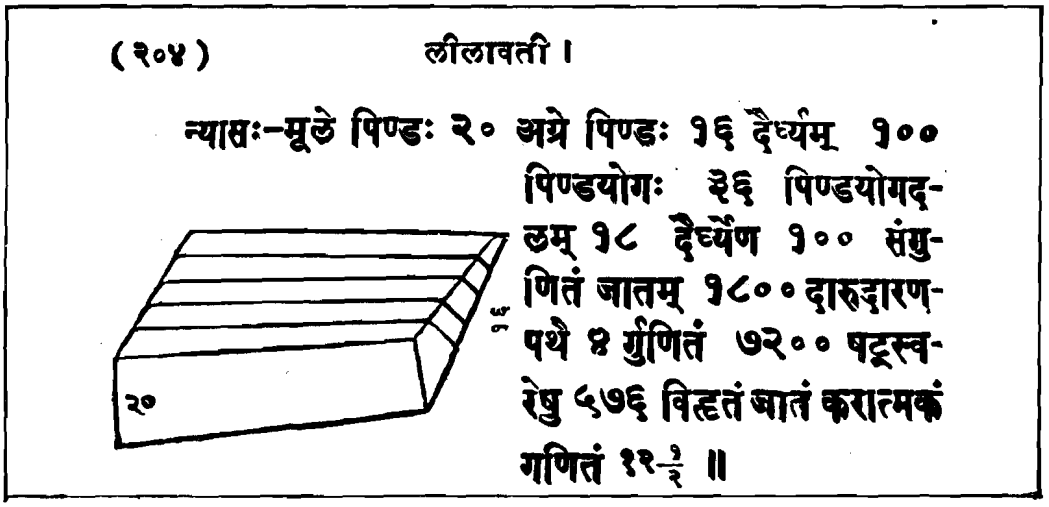

चित्र 4.14 लीलावती के एक पृष्ठ का आधुनिक पुनर्निर्माण जिसमें एक सूत्र दिया गया है। एक लकड़ी के खंड को यदि चार जगहों पर काटा जाएँ तो सभी अनुप्रस्थ काट के कुल क्षेत्रफल की गणना इस सूत्र के द्वारा की जा सकती है।

इसके साथ ही प्राचीन भारत में विज्ञान के विकास की कहानी हम समाप्त करते हैं। यदि आप इस प्रगति के बारे में और जानकारी प्राप्त करना चाहते हों तो आप इस खंड के अंत में बतायी गयी पुस्तकों का अध्ययन कर सकते हैं।

4.5 सारांश

इस इकाई में हमने पढ़ा कि ई.पू. चौथी शताब्दी तक भारत में एक केंद्रीयकृत शक्तिशाली राज्य बन गया था। इस राज्य को न केवल कृषि के लिए भूमि की ज़रूरत थी बल्कि उन तौर-तरीकों की भी ज़रूरत थी जिनसे कृषि की पैदावार में सुधार लाया जा सकता था। उन्हें कृषि के औज़ार बनाने के लिए खनिज साधन-स्रोतों की ज़रूरत तो थी ही, साथ ही साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए रखी जाने वाली सेना के लिए शस्त्र बनाने की भी आवश्यकता थी। इस प्रक्रिया में उन्होंने आदिवासियों को अपने अधीन कर लिया तथा उनकी भूमि पर अपना अधिकार कर लिया। भूमि जोतने और साधन-स्रोतों का अच्छी तरह उपयोग करने के लिए भी उन्हें इन आदिवासियों की मदद की ज़रूरत थी। इसके लिए उन्होंने इन आदिवासियों को अपने साथ मिला लिया और एक ऐसे सांस्कृतिक मेल-जोल की प्रक्रिया आरंभ हुई, जिससे सामाजिक संबंधों में लचीलापन आ गया।

- इस काल में बौद्ध तथा जैन धर्मों का उदय हुआ और उनके साथ उनका उदारवादी दर्शन और विचारधारा आई।
- इन सबने मिलकर मौर्य साम्राज्य में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास को एक नयी दिशा दी। विभिन्न तकनीकों एवं शिल्पकलाओं में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। अशोक के शासनकाल के बाद मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया।
- पहली शती ई.पू. से लेकर दूसरी शती तक का काल दक्षिण भारत में दस्तकारी और वाणिज्य के उत्कर्ष का काल था।

- गुप्त काल में केंद्रीय राज्य के स्थान पर स्थानीय प्रशासन आ गया जो अधिक लचीला था। शिल्पकारों तथा व्यापारियों की अपनी अलग-अलग संस्थाएँ थीं और स्थानीय प्रशासन में उनके प्रतिनिधि थे। गुप्त काल में राजा ब्राह्मणों को बड़े पैमाने पर भूमि दान में दिया करते थे, जिसके फलस्वरूप पुरोहित ज़मींदारों का एक नया वर्ग सामने आया। इन सामाजिक बदलावों के कारण स्थानीय स्तर पर पहल करने की प्रवृत्ति पैदा हुई। एक ओर इस प्रक्रिया में कृषि की पैदावार में वृद्धि करने तथा नये शिल्पों एवं तकनीकों को आरंभ करने के लिए प्रोत्साहन तो मिला, किंतु दूसरी ओर स्थानीय आदिवासी किसानों का दर्ज़ा और घट गया।
- गणितशास्त्र और खगोल विज्ञान की महत्वपूर्ण प्रगति हुई जैसा कि आर्यभट्ट जैसे गणितज्ञों एवं खगोलशास्त्र के ग्रंथों से पता चलता है। गुप्तकालीन शिल्पकारों ने लोहे तथा काँस्य में अपनी शिल्पकारी से अपने लिए अलग स्थान बना लिया था। दिल्ली के महरौली नामक स्थान में लगभग 400 ई. के आसपास बना लौह स्तंभ उनकी प्रौद्योगिकी की निपुणता का जीता-जागता सबूत है।
- गुप्त साम्राज्य के पतन के साथ, विज्ञान के विकास में रुकावट आ गयी। इसके बाद, केवल थोड़ी ही प्रगति हो सकी; वह भी व्यक्तिगत प्रयासों के कारण।

4.6 अंत में कुछ प्रश्न

तीन या चार पंक्तियों में संक्षिप्त उत्तर दीजिए।

1) मौर्य तथा गुप्त कालों में राज्य के सामाजिक-राजनीतिक संगठनों के बीच क्या अंतर था?

.....

.....

.....

.....

2) भारत में किस अवैज्ञानिक प्रथा के कारण खगोल विज्ञान का ह्रास हुआ?

.....

.....

.....

.....

3) गुप्त-काल के बाद भारतीय समाज की किन बातों के कारण विज्ञान का पतन हुआ?

.....

.....

.....

.....

4.7 उत्तर

बोध प्रश्न

1) (i), (ii), (iii), (iv), (vi)
2) क) सड़कें बनाना
   ख) हल चलाकर कृषि-कार्य तथा सिंचाई के अनेक साधन
   ग) अनाज की भूसी निकालने, कपास और ऊन की धुनाई तथा सूत की कताई आदि की प्रौद्योगिकी।
   घ) धातु-विज्ञान और धातु-कार्य
3) क) i) राज्य के नियंत्रण में काफ़ी ढील दी गई और व्यक्तिगत पहल को प्रोत्साहित किया जाता था।

ii) वंश की अपेक्षा व्यक्ति की संपत्ति तथा समाज में उसका कार्य अधिक महत्वपूर्ण हो गया था।

iii) कृषि तथा शिल्पकला की वस्तुओं के उत्पादन को महत्व देने के कारण किसान और शूद्र जैसे मेहनतकश मज़दूरों की स्थिति में सुधार हुआ।

ख) (ii), (iii), (v), (vii)

4) 10,248, नव-स्वर-गुण-भूत

5) क) (ii), (iv)
ख) (iii), (iv)
ग) (i), (iii)

अंत में कुछ प्रश्न

1) मौर्य काल में राज्य की शक्ति केंद्रीय थी जबकि गुप्त काल में राज्य का कठोर नियंत्रण कम हो गया और व्यक्तिगत रूप से पहल करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया गया।
2) ज्योतिषशास्त्र को खगोल विज्ञान के बराबर स्तर का मानने की अवैज्ञानिक प्रथा।
3) i) छोटे-मोटे रजवाड़ों का उदय जिन्होंने आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन दिया तथा व्यापार को हतोत्साहित किया।
ii) जाति-प्रथा सख्त हो गयी और उसने अपनी जड़े जमा लीं।
(आप इस उत्तर को और आगे बढ़ा सकते हैं।)

शब्दावली

अंतरिक्ष युग : ऐसा युग जिसमें अंतरिक्ष के बारे में ज्ञान अर्जित करके मानव जाति के हित में उसका उपयोग किया जाए।
अगेट : गोमेद पत्थर जो आभूषण बनाने के काम आता है।
अर्थशास्त्र : वह शास्त्र जिसमें उत्पादन, वितरण, उपभोग एवं आर्थिक ढाँचे का अध्ययन किया जाता है।
अध्यात्मवादी : आत्मा-परमात्मा संबंधी विचारों को मानने वाला।
अनार्य : आर्य जाति से भिन्न जातियों के लोग।
अपकेंद्रीय बल : केंद्र से बाहर कार्य करने वाला बल।
अयस्क : कच्ची धातु का स्रोत जिससे रासायनिक क्रिया द्वारा धातु को अलग किया जाता है।
अयस्क अपचयन : धातु ऑक्साइडों जैसे अयस्कों को कोयले के साथ जलाकर उनका परिवर्तन करना।
आदि मानव : प्राचीन काल में जंगलों में रहने वाला मनुष्य।
आदिम समाज : समाज की वह प्रारंभिक स्थिति जब मनुष्य ने मिलकर रहना शुरू किया।
आयुर्वेदिक पद्धति : जड़ी-बूटियों द्वारा रोगों का निदान करने की विधि।
आर्य : मनुष्यों की वह प्राचीन भारतीय जाति जो ईसा के हज़ारों वर्ष पहले से सभ्यता के लिए प्रसिद्ध है।
उत्तोलक : माप-तोल का यंत्र।
उपनिवेश : किसी साम्राज्य द्वारा अपने आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिए किसी अन्य राज्य को अपने अधीन करना।
उपनिवेशवादी : वे शासक जो उपनिवेश में विश्वास रखते हों।
ऊर्जा : किसी कार्य को करने में इस्तेमाल होने वाली शक्ति।
ऋग्वैदिक काल : ऋग्वेद का रचनाकाल (1500-700 ई.पू.)
ओनिक्स : एक प्रकार का कीमती पत्थर।
औद्योगिक युग : वह युग जिसमें उद्योगों का उद्भव और विकास हुआ।
कबीला : कुल, वंश, जाति, व्यक्ति विशेष को नेता मानने वाला जनसमूह।
किण्वन : खमीर तैयार करने की विधि।
खगोल विज्ञान : अंतरिक्ष से सम्बंधित विज्ञान।
खरोष्ठी : एक प्राचीन लिपि जो फ़ारसी की तरह दायें से बायें की ओर लिखी जाती थी।
चंद्र पंचांग : चंद्रमा के घटने-बढ़ने पर आधारित तिथियों का कलेंडर
चिकित्सा विज्ञान : रोगों के लक्षण जानने और उनके निदान की जानकारी देने वाली शिक्षा।
टोटेम : जनजातीय समूहों के वंश चिह्न।
टोटेमवादी : जनजातीय समूहों के वंश चिह्नों को कायम रखने में विश्वास करने वाला।
तंत्रिका : तंत्रिका उद्दीपन को शरीर के सभी भागों से मस्तिष्क तक ले जाने और ले आने का कार्य करती है।
दार्शनिक : किसी भी विषय पर गूढ़ चिंतन करने वाला, दर्शनशास्त्र को जानने वाला, तत्ववेत्ता।
धमनी : हृदय से रक्त को शरीर के अन्य भागों में ले जाने वाली रक्त नलिका।
धार्मिक अधिरचना : अपने अधिकार क्षेत्र में धर्म के स्वरूप को निश्चित करना।
नगरीकरण : शहर बनने की प्रक्रिया।
नाभिकीय युद्ध : परमाणु अस्त्रों द्वारा होने वाला युद्ध।
परमाणु युग : वह युग जिसमें नाभिकीय ऊर्जा का इस्तेमाल जीवन के अधिकांश क्षेत्रों में होने लगा।
परमाणु शास्त्री : नाभिकीय शिक्षा में दक्ष विद्वान्।
पीलिया : एक रोग जिसमें यकृत (जिगर) में विकार उत्पन्न हो जाता है जिससे शरीर व आँखें पीली पड़ जाती हैं और रोगी को पीले रंग का पेशाब होता है।
प्रेक्षण : गहराई से अवलोकन या निरीक्षण करना।
बूमरेंग : लकड़ी का एक डंडेनुमा अस्त्र।
ब्राह्मी : भारतवर्ष की वह प्राचीन लिपि जिससे नागरी, बंगला आदि आधुनिक लिपियाँ निकली हैं।
भौगोलिक परिस्थितियाँ : पृथ्वी के स्वरूप, जलवायु, उपज, एवं आबादी से संबंधित परिस्थितियाँ।
मधुमेह : एक प्रकार का रोग, जिसमें शर्करा उत्सर्जित या मूत्र के साथ बाहर आती है।

मल द्वार का नाड़ी व्रण : मल द्वार पर कष्टदायक व्रण या घाव जिससे कभी-कभी रक्त-स्राव भी हो सकता है।
मात्रात्मक विज्ञान : वह विज्ञान जो मापन के बारे में ज्ञान कराता है।
मिथक : पौराणिक कथा।
मिश्रधातु : रासायनिक क्रिया द्वारा दो धातुओं को मिलाकर एक धातु बना देना।
यजुर्वेदिक काल : यजुर्वेद का रचनाकाल (700-400 ई.पू.)
यांत्रिकी : मशीन से कार्य करने की विधि।
राहु और केतु : ज्योतिष शास्त्रों द्वारा बताये गये ग्रह।
वनस्पति विज्ञान : वह विज्ञान जिसमें पेड़-पौधों का अध्ययन किया जाता है।
बुशमैन : झाड़ियों में रहने वाली प्राचीन मानव जाति।
शरीरक्रिया विज्ञान : वह विज्ञान जिसमें शरीर में होने वाली चयापचयी रासायनिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।
शरीर रचना विज्ञान : वह विज्ञान जिसमें शरीर की आंतरिक रचना का अध्ययन किया जाता है।
शल्य चिकित्सा : चीर-फाड़ द्वारा रोगों का निदान करने वाली चिकित्सा पद्धति।
शिरा : शरीर के अन्य हिस्सों से रक्त को इकट्ठा करके हृदय में लाने वाली रक्त नलिका।
शिला प्रक्षेपक : शिला को एक स्थान से दूसरे स्थान तक सरकाने वाला।
संकेंद्रित गोले : एक केंद्र पर आधारित अनेक गोले।
संवेदी : बाह्य-आंतरिक प्रभाव के उद्दीपन को मस्तिष्क तक पहुँचाने वाली नसें।
सामंतशाही : वह व्यवस्था जिसमें बड़े ज़मींदार जनता से लगान वसूल करके राजा को 'कर' देते थे।
सीता भूमि : वह उपजाऊ ज़मीन जिसकी जुताई-बुआई सीधे राज्य की देख-रेख में होती थी।
स्लेज : बर्फ़ पर चलने वाली गाड़ी जिसे कुत्तों द्वारा खींचा जाता है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1 प्राचीन भारत, कक्षा 11 के लिए इतिहास की पाठ्य पुस्तक, एन.सी.ई.आर.टी., 1988
2 सभ्यता की कहानी, भाग-1 कक्षा IX-X के लिए अर्जुन देव, एन.सी.ई.आर.टी., 1986
3 सभ्यता की कहानी, भाग-2 कक्षा X के लिए अर्जुन देव, एन.सी.ई.आर.टी., 1986